Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : **www.shisrrj.com**
OPEN ACCESS
© 2024 SHISRRJ | Volume 7 | Issue 5
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

भारतीय आस्तिक संप्रदाय में चेतना का विचार

डॉ ज्योति कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, दर्शन-शास्त्र विभाग, जी.एस.सी.डब्ल्यू. जमशेदपुर, कोल्हन विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड।

Article Info

Accepted : 05 Oct 2024
Published : 30 Oct 2024

Publication Issue :
September-October -2024
Volume 7, Issue 5

Page Number : 88-92

सारांश- *मनुष्य दो तत्व के संयोग से बना है- शरीर और आत्मा। शरीर पांच भौतिक-तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि ,वायु के निश्चित अनुपात में मिश्रण का परिणाम है जबकि आत्मा शुद्ध चैतन्य है। चेतना मनुष्य को सृष्टि में श्रेष्ठतम होने का दर्जा प्रदान करता है। चेतना के कारण ही मनुष्य सृष्टि का हिस्सा होकर भी उसे परे जाकर यह जानने के लिए प्रयत्नशील रहता है कि विश्व की सृष्टि किसने और क्यों की ? साथ ही वह अपने आत्म-विकास एवं सृष्टि में आने के प्रयोजन को जानना चाहता है। चेतना शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है -पहले अर्थ में चेतना वह जीवन दयानी शक्ति है जो सभी चेतन वस्तुओं में पाई जाती है। इसके द्वारा ही भौतिक शरीर गतिमान होती है। इसे ही आत्मा या पुरुष आदि कहा जाता है। चेतना का दूसरा अर्थ है सोचने समझने एवं तर्क करने की शक्ति जो मनुष्य को ईश्वर के द्वारा प्राप्त एक अमूल्य वरदान है। इसी के आधार पर वह स्वयं को एवं विश्व को जानने की कोशिश करता है एवं दुख रुपी संसार से मुक्ति प्राप्त करना चाहता है। भारतीय दर्शन का आधार स्तंभ वेद में सर्वप्रथम चेतना शब्द का उल्लेख मिलता है। वेद में चेतना को मन की संज्ञा से विभूषित किया गया है। भारतीय आस्तिक दर्शन में आत्मा का अर्थ जीवात्मा या शरीर युक्त आत्मा से है। आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप में यहां शुद्ध चैतन्य है। यह शरीर, इंद्रिय ,मन, बुद्धि और अहंकार से भिन्न है। आस्तिक दर्शन में जहां कुछ दार्शनिक चेतना को आत्मा का आकस्मिक गुण मानते है वहीं कुछ दार्शनिकों ने चेतना को आत्मा का स्वाभाविक गुण माना है। आकस्मिक गुण मानने वाले दार्शनिकों के अनुसार चेतन की उत्पत्ति आत्मा में तब होती है जब इसका संबंध इंद्रिय मन और शरीर के द्वाराबाहर जगत से होता है। इसके विपरीत कुछ दार्शनिकों ने आत्मा का स्वभाव ही चेतनायुक्त माना है। उनके अनुसार आत्मा की तीन अवस्था होती है- जाग्रत ,स्वप्न और सुषुप्ति। इन तीनों ही अवस्थाओं में आत्मा चेतना से युक्त रहते हैं। उपनिषद में भी आत्मा की चार अवस्थाओं का वर्णन है जिसकी तुलना ब्रह्मा के स्वरूप से की गई है। यहां भी आत्मा को स्वभावत: चेतनायुक्त माना गया है। यह शाश्वत और अपरिवर्तनशील है। यह न जन्म लेती है न मरती है। जन्म और मृत्यु शरीर का होता है ,आत्मा का नहीं। अपने मूल रूप में यह नित्य एवं चेतनायुक्त है। इसमें कोई भी भौतिक या मानसिक*

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

गुण नहीं है। आत्मा शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों का साक्षी है लेकिन वह स्वयं इससे पृथक है।

संकेत शब्द *: - आस्तिक संप्रदाय, चेतना की उत्पत्ति, चेतना का स्वरुप, चेतना की अवस्थाएं, मुक्ति।*

इस वैज्ञानिक युग में बौद्धिक मनुष्य के समक्ष एक महत्वपूर्ण प्रश्न बार-बार उठता है कि चेतना का स्वरूप क्या है? चेतना किसे कहते हैं ?इसका उत्तर देना उतना ही कठिन कार्य है जितना मिठाई खाकर उससे प्राप्त अपनी अनुभूति को बतलाना। भारत में वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक आस्तिक एवं नास्तिक चिंतकों ने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है कि चेतना किसे कहते हैं ? इस शोध में सूत्र काल के 6 आस्तिक दर्शन जिसे षडदर्शन भी कहा जाता है में वर्णित चेतना विचार को प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है।

मनुष्य दो तत्व के संयोग से बना है- शरीर और आत्मा। शरीर पांच भौतिक-तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि ,वायु के निश्चित अनुपात में मिश्रण का परिणाम है जबकि आत्मा शुद्ध चैतन्य है। चेतना मनुष्य को सृष्टि में श्रेष्ठतम होने का दर्जा प्रदान करता है। चेतना के कारण ही मनुष्य सृष्टि का हिस्सा होकर भी उसे परे जाकर यह जानने के लिए प्रयत्नशील रहता है कि विश्व की सृष्टि किसने और क्यों की ? साथ ही वह अपने आत्म-विकास एवं सृष्टि में आने के प्रयोजन को भी जानना चाहता है। चेतना शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है - पहले अर्थ में चेतना वह जीवनदायनी शक्ति है जो सभी चेतन वस्तुओं में पाई जाती है। इसके द्वारा ही भौतिक शरीर गतिमान होती है। इसे ही आत्मा या पुरुष आदि कहा जाता है । चेतना का दूसरा अर्थ है सोचने समझने एवं तर्क करने की शक्ति जो मनुष्य को ईश्वर के द्वारा प्राप्त एक अमूल्य वरदान है। इसी के आधार पर वह स्वयं को एवं विश्व को जानने की कोशिश करता है एवं दुख रुपी संसार से मुक्ति प्राप्त करना चाहता है।

भारतीय दर्शन का आधार स्तंभ वेद हैजिसमें चेतन शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम मिलता है। वेद में चेतना को मन की संज्ञा से विभूषित किया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है - उस समय न असत था ना सत् था, तब पहली बार काम का उद्भव हुआ जिसमें मनुष्य का बीज छिपा हुआ था। इस मनुष्य को यजुर्वेद में एक विशिष्ट ज्योति, प्रज्ञा का अमृत, तीनों कालों की सीमाओं तक विचरण करने वाला, तीन विभिन्न वेदों का केंद्र बिंदु तथा समस्त प्रज्ञाओं को पिरोनेवाला कहा गया है। वेद में चेतना के बारे में ज्यादा विचार विमर्श नहीं किया गया, बल्कि कुछ प्रश्न हमारे समक्ष लाकर छोड़ दिए गए हैं जैसे मैं कौन हूं, हमारा गंतव्य क्या है, आदि। फिर उपनिषद में चेतना को ब्रह्म मानते हुए कहा गया कि वह चेतन सत्ता विराट स्वरूप, दिव्य आभा से युक्त होकर भी अमूर्त है। बाहर होकर भी अंदर है। संसार का रचनाकार होकर भी स्वयम अजन्मा है। फिर कहा गया है प्राण, मन, इंद्रिय उसी से उत्पन्न होती है। इसमें इंद्रिय और शरीर से मन को सूक्ष्मदर माना गया है। मन, इंद्रियों, उनके विषय, रूप, रस, गंध आदि से परे हैं। इंद्रिय दिखती हैं मन नहीं दिखता है। इंद्रियां स्थूल है मन सूक्ष्म है। इसमें मन को शरीर रूपी रथ और इंद्रिय रूपी घोड़े को नियंत्रित करने वाला लगाम कहा गया है। भारतीय दर्शन में चेतना को आत्मा का गुण माना गया है। आत्मा का अर्थ जीवात्मा या शरीर से युक्त आत्मा से है। आत्मा शरीरस्थ होकर भी शरीर से बिल्कुल भिन्न है। अपने वास्तविक स्वरूप में वह शुद्ध चैतन्य है। इसके तीन लक्षण बताए गए हैं -शारीरिक लक्षण ,मानसिक लक्षण और नैतिक लक्षण।

शारीरिक लक्षण- जब आत्मा जन्म लेकर संसार में प्रवेश करता है तो उसे तीन शरीरों को प्राप्त करना पड़ता है- स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। स्थूल शरीर ,यह शरीर आत्मा को अपने माता-पिता से प्राप्त होता है। यह पांच तत्वों से बना है। यह अन्न द्वारा पोषित होता है इसलिए इसे अन्नमय कोष कहते हैं। इस भोगायतन भी कहा जाता है, क्योंकि

इस शरीर के द्वारा ही मनुष्य सांसारिक सुख की प्राप्ति करता है। सूक्ष्म शरीर, 17 तत्व (मन बुद्धि पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेंद्रियां) तथा पांच वायु (प्राण वायु, अपान वायु, व्यान वायु, उदान वायु, और समान वायु) से मिलकर बना है। इसलिए इसे प्राणमाया, मनोमाया और विज्ञान माया का संयुक्त रूप कहा जाता है। मृत्यु के बाद भी जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर मौजूद रहता है जिसमें इच्छा, विचार और कार्यों के संस्कार सुरक्षित रहते हैं। उसी के आधार पर जीवात्मा के भावी जीवन का स्थूल शरीर तैयार होता है। कारण शरीर, यह आत्मा का मौलिक आधार है। इससे स्थल और सूक्ष्म शरीर उत्पन्न होता है। यह आनंदमय अवस्था है इसलिए इसे आनंदमय कोष भी कहा जाता है। जब जीवात्मा इन तीनों शरीर से मुक्त हो जाती है तब वह अपनी वास्तविक अवस्था को प्राप्त कर लेती है।

आत्मा का मानसिक लक्षण - आत्मा अपने वास्तविक स्थिति में अपरिवर्तनशील और चेतनशील है किंतु शरीर धारण करने के बाद इसमें ज्ञान, इच्छा और क्रिया की उत्पत्ति होती है। यह सुख-दुख प्राप्त करने वाले आत्मा बन जाती है। मंडूक उपनिषद में आत्मा की (चेतना की) चार अवस्थाएं बताई गई जिसे विश्व, तेजस, प्रज्ञा और तुरीय अवस्था कहा जाता है। विश्व - जब आत्मा का संबंध स्थूल शरीर से होता है तब यह जाग्रत स्वप्न और गहरी निद्रा की अवस्था से गुजरती है। इस अवस्था की चेतना में आत्मा विश्व कहलाती है। इसे ब्रह्मा का विराट स्वरूप कहा जाता है। तेजस- आत्मा स्वप्न की अवस्था में तेजस कहलाते हैं। तेजस सूक्ष्म शरीर की अचेतन अवस्थाओं की इच्छाओं और संस्कार का प्रकाश है। इसे ब्रह्म का हिरण्य गर्भ स्वरूप कहा जाता है। प्रज्ञा- गहरी निद्रा की अवस्था में आत्मा प्रज्ञा कहलाते हैं। यह अवस्था कुछ समय तक ही रहते हैं इसे आत्म प्रकाश कहा जाता है। तुरिया अवस्था - यह चौथी अवस्था है जो विशुद्ध चेतन की अवस्था है। यह वस्तुगत अनुभव से भिन्न विशुद्ध अवस्था है।यह आनंद स्वरूप, ब्रह्म स्वरूप माना गया है। जीवात्मा के नैतिक लक्षण - एक व्यक्ति का शरीर, उसका परिवार, समाज, उसका मस्तिष्क और बुद्धि सब उसके पूर्व जन्म के नैतिक चरित्र पर निर्मित होता है। जीवात्मा का शारीरिक, मानसिक एवं अन्य विशेषताओं का आधार उसके नैतिक लक्षण है। आत्मा के नैतिक गुण उसके द्वारा किए गए कर्मों का फल है।

भारतीय आस्तिक दर्शन में विशुद्ध आत्मा, शरीर, इंद्रिय, मन तथा बुद्धि और अहंकार से भिन्न है। यह जीवात्मा शाश्वत और अपरिवर्तनशील होती है। यह न जन्म लेती है न मरती है। जन्म और मृत्यु शरीर का होता है ,आत्मा का नहीं। अपने मूल रूप में आत्मा शाश्वत और चेतन है। इसमें कोई भी भौतिक या मानसिक गुण नहीं है। आत्मा शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों का साक्षी है लेकिन वह स्वयं दोनों से पृथक है। आत्मा के संदर्भ में सभी दर्शन में निम्नलिखित विचार दिए गए हैं -न्याय दर्शन- न्याय दर्शन के अनुसार आत्मा एक द्रव्य है। चेतना आत्मा का आकस्मिक गुण है। आत्मा स्वरूपत: अचेतन है। जब आत्मा का संपर्क मन के साथ मन का इंद्रियों के साथ और इंद्रियों का बाह्य वस्तुओं से होता है तब आत्मा में चेतना की उत्पत्ति होती है । इस तरह चेतना आत्मा का स्वभाव नहींहै बल्कि वह वस्तु के संपर्क पर आधारित गुण है। आत्मा, सुख-दुख, राग-द्वेष, धर्म-अधर्म से परिपूर्ण है। इसे और स्पष्ट करते हुए न्याय दर्शन कहता है कि कभी-कभी ऐसा होता है कि हमारे सामने से अनेक दृश्य गुजर जाते हैं फिर भी हमें उसका ज्ञान नहीं रहता है। इससे स्पष्ट होता है कि इंद्रिय और वस्तु के संपर्क के अलावे भी कोई ऐसी सत्ता है जिसके अभाव में चीजों के सामने रहते हुए भी वह हमें ज्ञात नहीं होते हैं। यही सत्ता चेतना है जिसके बिना मनुष्य को बाह्य एवं आंतरिक तथ्यों का ज्ञान संभव नहीं है। चेतना भौतिक प्रकृति के प्रति आत्मा के द्वारा की गई प्रतिक्रिया है। चेतना ना स्वयं प्रकाश है ना स्वयं सिद्ध है।

सांख्य दर्शन- यह द्वैतवादी दर्शन है। इसमें पुरुष और प्रकृति के द्वारा विश्व को विकसित माना गया है। पुरुष चेतन है, स्वयं सिद्ध है। चेतना इसका स्वभाव है कोई आकस्मिक गुण नहीं। पुरुष को ही आत्मा कहा जाता है। यह अपने हर रूप में हमेशा चेतन-युक्त रहता है। यह संसार की वस्तु के साथ-साथ स्वयं को भी प्रकाशित करती है। यह शरीर, बुद्धि,

अहंकार ,इंद्रिय से भिन्न है। पुरुष द्रष्टा है,ज्ञाता है,कर्ता है। यह तीन गुणों से रहित है एवं शाश्वत है। यह कार्य कारण की श्रृंखला से मुक्त है। आत्मा को सुख-दुख, राग द्वेष के साथ-साथ आनंद से भी रहित माना गया है। उनके अनुसार आनंद और चेतना एक ही वस्तु में नहीं रह सकते। दोनों विरोधात्मक गुण है। आनंद सत्व गुण का फल है और आत्मा सभी गुणों से रहित हैं । इसलिए आनंद से युक्त मानने पर आत्मा में द्वैत का निर्माण होगा । आत्मा केवल चेतन युक्त है। संख्या में अनेक आत्मा को माना गया है। यहाँ पुरुष और प्रकृति दो अलग-अलग सत्ता है। इसके विपरीत योग दर्शन में प्रकृति और पुरुष को एक माना गया है। यहाँ चित्त को मन, बुद्धि और अहंकार से युक्त माना गया है। चित् में तीनों गुण मौजूद हैं। इसकी पांच भूमिया है - क्षिप्त ,मूढ़ ,विक्षिप्त ,एकाग्र और निरोध ।क्षिप्त की अवस्था में रजोगुण की प्रबलता होती है। इसमें चित् चंचल और सक्रिय रहता है। उसका ध्यान किसी एक वस्तु पर केंद्रित नहीं होता। वह एक वस्तु से दूसरे वस्तु की ओर भागता रहता है। इसमें इंद्रियों और मन पर संयम का अभाव रहता है। मूढ चित् की वह अवस्था है जिसमें तमोगुण का प्रभाव रहता है। इसमें निद्रा,आलस्य की प्रबलता होती है। चित् में निष्क्रियता का उदय होता है। तीसरी अवस्था में चित् का ध्यान कुछ समय के लिए वस्तु पर जाता है परंतु वह स्थिर नहीं रहता है। इसका कारण यह है कि चित्त में स्थिरता का अभाव रहता है । चित्त वृत्तियों का कुछ निरोध तो होता है फिर भी रजोगुण का अंश विद्यमान रहता है। यह अवस्था तमोगुण से शून्य हैं। यह क्षिप्त और मुढ के बीच की अवस्था है । चौथी अवस्था में सत्व गुण का प्रभाव रहता है। इसमें ज्ञान का प्रकाश रहता है। इसमें चित् अपने विषय पर केंद्रित होने लगता है परंतु संपूर्ण चित् वृत्तियों का निरोध नहीं होता है। अंतिम अवस्था में सभी विषयों से हटकर ध्यान एक विषय पर एकाग्र हो जाता है । इसमें सभी चित् वृतियों का निरोध हो जाता और स्थिरता का प्रादुर्भाव होता है। प्रथम तीन चित् की साधारण अवस्थाएं हैं जबकि एकाग्र और निरोध चित् की और असाधारण अवस्थाएं हैं। इस प्रकार योग दर्शन में पुरुष प्रकृति के साथ संयोग स्थापित कर अपना सही चेतनत्व प्राप्त करता है।

मीमांसा और वेदांत दर्शन - न्याय दर्शन की तरह ही चेतना को आत्मा का आगंतुक गुण मानता है। आत्मा एक द्रव्य है जो संभवत अचेतन है। जब इसका संपर्क मन और इंद्रिय से होता है तब इसमें चेतना का उदय होता है सूषुप्ती की अवस्था में मन और इंद्रिय के सहयोग न होने के कारण आत्मा ज्ञान से शून्य रहती है और मोक्ष की अवस्था में सभी विशेष गुणों से रहित हो जाते हैं। मीमांसा दर्शन आत्मा को अमर एवं स्वयं प्रकाश मानता है। यह चेतना ही वस्तु को ,आत्मा को एवं स्वयं को आलोकित करते हैं। सांख्य की तरह मीमांसा भी चेतना को आत्मा की क्रिया मानते हैं। शंकर आत्मा और चित् के बीच एकरूपता के सिद्धांत को प्रस्थापित करते है। शंकर के अनुसार चित्त और आत्मा के बीच का संबंध या तो विभिन्नता का हो सकता है, या एकरूपता का, या विभिन्नता- एकरूपता दोनों का। दोनों पूर्णता विभिन्न नहीं है, क्योंकि तब उनमें द्रव्य और गुण का संबंध नहीं हो सकता। संयोग के द्वारा भी उनमें संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह भौतिक वस्तुएं नहीं है । वह एक साथ विभिन्न और एक रूप भी नहीं हो सकते, क्योंकि दोनों स्व विरोधी वक्तव्य है। इस कारण शंकर दोनों में तादात्म्य संबंध मानते हैं। शंकर के दर्शन में आत्मा को ब्रह्म कहा गया है जो परमार्थत: सत्य है। यह स्वयं सिद्ध है। आत्मा का स्वरूप चेतन है जिसे के "मैं' के द्वारा संकेत किया जाता है। यहाँ चेतना की तीन अवस्थाएं मानी गई है- जागृत अवस्था,स्वप्न अवस्था और सुषुप्त अवस्था। जागृत अवस्था में एक व्यक्ति को बाहय जगत की चेतना रहती है। स्वप्न अवस्था में आंतरिक विषयों के शब्द स्वरूप में चेतना रहते हैं । सुषुप्त अवस्था में बाह्य और अभ्यंतर दोनों विषयों की चेतना नहीं रहती फिर भी किसी न किसी रूप में चेतना मौजूद रहते हैं। तीनों अवस्थाओं में चेतना सामान्य है । चेतन स्थाई तत्व है। शंकर कहते हैं चैतन्य आत्मा का स्वरूप लक्षण है। यह आत्मा का स्वभाव है आगंतुक गुण नहीं । चेतना का अर्थ है शुद्ध चेतन्य। शंकर चेतना के साथ-साथ आत्मा में आनंद को भी स्वीकार करते हैं और सत्ता को भी स्वीकार करते हैं। इसलिए वह आत्मा को सत, चित और आनंद कहते हैं। आत्मा नित्य, शुद्ध और निराकार हैं। शुद्ध चेतन होने के कारण आत्मा

का स्वरूप ज्ञानात्मक है और स्वयं प्रकाश है तथा विभिन्न विषयों को प्रकाशित करता है। यह तीनों कालों में अपरिवर्तनशील है। इसे सुख-दुख, धर्म-अधर्म तथा उसके परिणाम से कोई मतलब नहीं है। आत्मा परमर्थिक रूप से सत्य है। आत्मा ही ब्रह्म है ब्रह्म ही आत्मा है। रामानुज के अनुसार जीवात्मा ब्रह्मा का अंग है। चित् ही जीवात्मा है। ज्ञान और आनंद जीवात्मा के संभावित गुण है। यह शरीर मन इंद्रिय से भिन्न एवं ईश्वर पर आश्रित है। जीवात्मा चेतन द्रव्य है। चेतन आत्मा से इस प्रकार संबंधित है जिस प्रकार विशेष्य विशेषण से।

अंत में कहा जा सकता है कि भारतीय दर्शन में जीवात्मा एक शाश्वत, आध्यात्मिक सत्ता है जो शरीर, मन, इंद्रिय से भिन्न है। आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान अपरोक्ष अनुभूति या आत्म अनुभूति द्वारा होता है। प्रत्येक व्यक्ति इसी जीवन में आत्म अनुभूति के द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है। मुक्ति को जीवन मुक्ति कहा जाता है । इसके विपरीत मृत्यु के बाद प्राप्त मुक्ति विदेह मुक्ति कहलाता है। चेतना मनुष्य के लिए ईश्वर का आशीर्वाद है। परंतु यह इसका उपयोग अभिशाप के रूप में कर रहा है। सारी अव्यवस्था, विसंगतियां एवं अपराध का बीज हमारी चेतना ही है। आइंस्टीन ने कहा था मानव के लिए सबसे बड़ी दुख की बात है कि उसमें सचेतनता नहीं रह गई है उसकी चेतना में एक अस्थाई और अंदरूनी फाट दिखता है जिसके कारण हर तरफ विभाजन ही विभाजन नजर आता है। इस फाट के कारण मनुष्य स्वार्थी बन गया है और एक दूसरे से नफरत करने लगा है। अपने शांति और आनंद को खो चुका है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि हम चेतना के स्वरूप पर पुन: विचार करें एवं यह जानने की कोशिश करें कि चेतना का वास्तविक स्वरूप क्या है। उसका लक्ष्य क्या है ? ईश्वर ने हमें चेतना *किस उद्देश्य से प्रदान की ? उन्होंने हमें यह गौरव क्यों प्रदान किया?*

सन्दर्भ सूची

1 .सक्सेना ,श्री कृष्णा - भारतीय दर्शन में चेतना का स्वरुप, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
2 .सिद्धालंकार सत्यव्रत- ऐकदाशोपनिषद विजय कृष्णा लखन पल्ली एवं विद्या विहार
3 रानाडे रामचंद्र - उपनिषद दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी
4 विश्व वन्धु - वेद्शास्त्र संग्रह, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
5. ऋग्वेद
6. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद - भारतीय दर्शन की रुपरेखा